वेदान्त आश्रम की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २३ मई - २०२३ प्रकाशन - ०५

वेदान्त पीयूष

वेदान्त मिशन की मासिक हिन्दी मासिक पत्रिका

मई 2023 / वर्ष 23 / प्रकाशन 05

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९५०, सुदामा नगर, इन्दौर - ४५२००९; मध्यप्रदेश

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

विषय सूचि

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्यमध्यमाम्

अस्मदाचार्यपर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

देहेन्द्रियगुणान्कर्माणि अमले सच्चिदात्मनि।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत्॥

(श्लोक - २१)

अविवेकी अज्ञानवशात् मन और इन्द्रियों के कार्यकलापों को सच्चिदानन्द आत्मा पर अध्यस्त कर देते है, जैसे आकाश में दीखने वाली नीलिमा को अज्ञानी लोग आकाश का ही रंग मान लेते हैं।

सन्देश

परिस्थिति–सापेक्ष अनुकूलता
की खोज ही संसार है।

सन्देश

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को अनुकुल बनाना चाहता है। मूलभूत सुख-सुरक्षा को प्राप्त करना यह तो चार पुरुषार्थ के अन्तर्गत ही आता है। किन्तु उसे ही जीवन का लक्ष्य मानकर बाह्य जगत में अनुकुलता की खोज करना मोहमात्र है; यही संसार का हेतु है। क्योंकि इसमें दो प्रकार के मोह दीखाई देते है। १. बाह्य जगत सत्य है और हम उससे स्थायी रूप से सुखी-सुरक्षित होकर सन्तुष्ट हो सकते है। २. जो सुखी-सुरक्षित होना चाहता है, वह हम एक संकुचित जीव है और यही हमारी वास्तविकता है।

यह दोनों अज्ञानजनित मोह संसार में उलजा कर बहिर्मुख बनाए रखने का हेतु है। बाहर से ही अनुकुलता की व्यवस्था करते रहना और उसीको लक्ष्य समझ कर जीने में हम पहले से ही जिस निश्चय से युक्त है; उसे ही दृढ़ करते है। उसके उपरान्त अब उसकी सिद्धि के लिए हमें कर्म का ही आश्रय लेना है। बाहर के अस्थायी, नश्वर, देशादि में संकुचित पदार्थों से कभी भी पूर्णतः सन्तुष्टि नहीं होती है। बाहर की परिस्थिति पर आश्रित होकर जीने का अभिप्राय संकुचित कर्ता-भोक्ता जीव बने रहकर कुछ करना मात्र है। समस्त संसार संकुचित जीव पर ही आश्रित होता है। अपनी संकुचिता के बारे में हमने कोई प्रामाणिक विचार नहीं किया है, किन्तु नहीं जानने की वजह से कल्पना की हुई है। अपनी संकुचिता को समाप्त करने का एक ही तरीका है कि अपने अज्ञान को विनम्रता से स्वीकार करके उस पर खुले मन से विचार करें। किन्तु अब उस पर पूर्णविराम लग जाता है और समस्त चेष्टाएं जीवत्व को बाधित करने की दिशा में नहीं किन्तु उसे ही पुष्ट करके उसमें निष्ठा बनाए रखने की दिशा में हो रही है। अतः बाह्य जगत में अनुकुलता खोजते रहने से हम अन्तहीन संसार की दिशा में ही यात्रा करते है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

कर्मफल

कर्म करने की स्वतंत्रता ही मनुष्य का सौभाग्य है। प्रत्येक कर्म का कोई न कोई फल होता है। कर्म और कर्मफल के प्रति उचित व प्रामाणिक समझ होने पर यह कर्म मुक्ति का साधक बनता है। अन्यथा यही कर्म गलत, अप्रामाणिक समझ की वजह से बन्धन का हेतु बनता है। अतः कर्म और कर्मफल के प्रति उचित समझ होना आवश्यक है।

प्रबुद्धता से युक्त किया गया कर्म मन को शान्त, प्रसन्न और धन्यता से युक्त करता है। इन लक्षणों से हम समझ सकते हैं कि हमारी समझ उचित है कि नहीं। कई बार, कई लोग में, अथवा स्वयं के जीवन में भी कर्म में उत्साह से प्रवृत्ति तो होती है, किन्तु शनैः शनैः यह देखा जाता है कि कर्म में पहले जैसा उत्साह नहीं बना रहता है और कर्म बोजारूप लगने लगता है। कर्मक्षेत्र में प्रवेश करने पर मन में चिन्ता, तनाव आदि की समस्याएं आने लगती है। यह जीवन का विकास नहीं, किन्तु पतन है। तनाव और डिप्रेशन की समस्याएं भी दीखाई देती है। जिसका अत्यन्त भयानक परिणाम होता है कि परिस्थिति से पलायन करने को विवश होते है। इस विवशता में जब दिशाविहीनता लगने लगती है तो जीवन जीने की इच्छा ही मर जाती है, ऐसे में आत्महत्या ही एकमात्र मार्ग दिखाई देता है। भगवान की महति कृपा से प्राप्त इतने मूल्यवान जीवन को एक क्षण में अवचिारपूर्वक गवां देना बुद्धिमत्ता नहीं है।

किसी भी व्यक्ति की कर्म में प्रवृत्ति किसी प्रयोजन अर्थात् उसके फल को ध्यान में रखकर ही होती है। इसके लिए अपने अन्दर स्पष्ट संकल्प के साथ प्रवृत्ति होनी चाहिए। किन्तु साथ में यह ध्यान रहें कि हमारी स्वंतत्रता कितनी है? हम कर्मफलविषयक मात्र संकल्प ही कर सकते है। हमारे पास कर्म की ही स्वतंत्रता है, फल की नहीं। अतः बुद्धिमत्ता उसीमें है कि बगैर कर्मफल की चिन्ता के, अपनी स्वतंत्रता को पूर्णतः धारण करके समग्रता से उर्जा कर्म में ही लगाएं।

कर्मफल की चिन्ता अर्थात् फलासक्ति क्यों होती है और उसका क्या दोष है उस पर गहराई से विचार करके उससे मुक्त होना चाहिए। तब ही कर्म मुक्तिसाधक बनता है। कर्मफल के प्रति पराधीनता ही कर्मफलासक्ति व चिन्ता का हेतु होता है। कर्मफल के प्रति आसक्ति के पीछे अनेकों मोह अर्थात् नासमझी का अस्तित्व है। सब से पहले स्वयं को ही कर्ता-धर्ता मानकर

कर्मफल

जीते है। अपने जीवन को चलाने का बोझा हमारे ही सिर पर है। जब कि सब कुछ एक ईश्वरीय व्यवस्था के अन्तर्गत चल रहा है। किसी एक परिस्थिति अर्थात् कर्मफल निर्माण में पूरी समष्टि का योगदान है। उसमें हमारा भी कुछ आवश्यक रोल है, किन्तु बहुत अल्प। समस्त परिस्थिति ईश्वर प्रदत्त है, ऐसे में हमारा दायित्व मात्र अपने कर्म का निर्धारण करके उसे समग्रता व निश्चिंतता से करना है। जो इन ईश्वरीय व्यवस्था को नहीं देखते हुए सतही दृष्टि मात्र से देखता है, वो अपने तथा अपनों के जीवन का समस्त बोझ अपने ही सिर पर लेता है - जो कि यह अव्यावहारिक है। ऐसे में या तो वह कर्मफल जो कि भविष्य के गर्भ में विद्यमान है, उसके बारे में चिन्ता से युक्त भविष्य में ही रमता है। समग्रता से अनुपलब्धता की वजह से इष्टफल की सिद्धि नहीं हो पाती है, जिसके परिणामस्वरूप भूतकाल की ग्लानि से युक्त रहता है। विफलता में बहुत ही वीरलों में आत्मविश्लेषण होता है। अपने सिर पर बोझा रखनेवालों में विश्लेषण नहीं हो पाता है। आत्मविश्लेषण के अभाव में स्वयं हीनता से ग्रस्त, जीवन के प्रति निरुत्साहित होने लगता है।

यदि प्रभुइच्छा व पुण्यकर्म के प्रताप से इष्टफल की सिद्धि हो भी गई तो उसके कर्तृत्व का अभिमान अपने उपर लेकर गर्वान्वित होता है। उस उपलब्धि के नशे में मदोन्मत्त होकर उसीमें रमता रहता है। अन्य कर्म के लिए उपलब्धता खो बैठ़ता है। इस प्रकार विफलता में छोटापन व हीनवृत्ति से युक्त और सफलता में बड़प्पन के अभिमान और मदोन्तत्त हो जाता है। इसके पीछे कारण ईश्वरीय सत्ता के विषय में अज्ञान व अश्रद्धा की वजह से, अपने उपर बोझा लेकर जीना है।

सतही जीवन की वजह से अपनी धारणा व महत्त्वबुद्धि के अनुरूप अनुकूलता व उपलब्धि ही सुख और सुरक्षा का हेतु है-यह मानकर जीता है। इस मान्यता की वजह से सतत बाह्य वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति पर आश्रित जीवन होता है। यह ही आसक्ति का हेतु है। यथार्थ यह है कि समस्त बाह्य परिस्थिति आदि क्षणिक, अस्थायी व नश्वर है। अतः अपने अन्दर अनुकुल की आस्पद वस्तु आदि को खोने का भय सताता रहता है। ऐसा मनुष्य जीवन में कभी सुख-शान्ति व निश्चिन्ता से युक्त नहीं हो सकता है। ऐसा पराधीनता का जीवन नरकतुल्य प्रतीत होने लगता है।

इस प्रकार कर्मफल की चिन्ता व आसक्ति का यह एक दोष और कारण है। उसका समाधान कैसे हो सकता है, जिससे कि कर्म में निश्चिंतता और समग्रता से युक्त हो सकें। इसके अलावा यह भी विचार करके देखना चाहिए कि हमें कर्मफल के प्रति आश्रित क्यों हो रहे है? इन बिन्दुओं के प्रति आगामी अंकों में चर्चा की जाएगी।

मानसं शमयेत्तस्मात्
ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना।
प्रशान्ते मानसे ह्यस्य
शारीरमुपशाम्यति।।

जिस प्रकार जल से अग्नि को शान्त किया जाता हैं, वैसे ही ज्ञान के द्वारा मानसिक सन्ताप को शान्त करना चाहिये। मानसिक सन्ताप शान्त होने से शारीरिक सन्ताप भी शान्त होने लगता हैं।

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

तच्चिन्तनं तत्कथनं
अन्योन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च
ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधा ॥

ब्रह्माभ्यास का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का ही चिन्तन हो, उसी की चर्चा हो, अन्योन्य चर्चा एवं चिन्तन से ज्ञान में निष्ठा में रमण हो।।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि श्रद्धालु व्यक्ति अपनी ब्रह्मस्वरूपता के बारे में अपनी बुद्धि द्वारा चिन्तन करें, तथा इस वाक्यवृत्ति ग्रन्थ के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके यथाशक्ति सदा अभ्यास करें।

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार के वशीभूत होकर अपने उन-उन संस्कारों में आदतवशात् प्रवाहित होते है। ज्ञान मात्र बुद्धिगत होने पर उसमें ही प्रवाहित होते रहेंगे और ज्ञान अपना नहीं हो पाएगा। अत: उसे हृदयान्वित करना होगा। उसके लिए सतत ब्रह्माभ्यास की आवश्यकता है। सतत अपनी अनात्मभूत उपाधि को धारण करके बाहर के जगत में ही व्यवहार किया जाता है, ब्रह्म तो व्यवहार योग्य है ही नहीं। अत: अधिकतर वृत्ति अनात्मापरक बनी रहती है, जिससे कि अनात्मा व व्यवहार करनेवाले जीवभाव में ही दृढ़ता होती जाती है। अत: ब्रह्माभ्यास का महत्व समझते हुए उसका आश्रय लेना चाहिए। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस अभ्यास का क्या स्वरूप होगा?

इस सन्दर्भ में आचार्य यहां बताते हैं कि तत् चिन्तनम्। तत् अर्थात् उसी ब्रह्म का चिन्तन करें। ब्रह्म मन और वाणी से परे है, अत: उसका चिन्तन कैसे किया जाएं? ब्रह्म का चिन्तन करने का आशय है कि अब्रह्म अर्थात् अनात्मपरक चिन्तन से अपना ध्यान हटाएं। समस्त दृश्य को अशाश्वत, अस्थायी, मिथ्या जानते हुए उसका निषेध होने दें। इस प्रकार इस अनात्मा, दृश्य से ध्यान हटाकर दृष्टा की और ध्यान मोडें। दृष्टा में भी दृश्य, औपाधिक अंश, जो कि दृश्य की अपेक्षा रखता है, उसकी सापेक्षता जानें। सापेक्षता अर्थात् नैमित्तिक होने के निश्चय से उसका निषेध होता जाएं। तब जो भी हमारी बगैर निमित्त के निरपेक्ष अस्मिता है, उसके कान्शियस होना है। इस प्रकार दृश्य को देखकर

लघु वाक्यवृत्ति

दृष्टा और उसकी वास्तविकता के कान्शियस होना ब्रह्माभ्यास है। यह सतत चिन्तन अर्थात् अपनी ब्रह्मस्वरूपता की अवेरनेस बनाए रखें।

तत्कथनम् – साधारणत: संसारित्व के ही संस्कार होने से लोगों के मध्य में आकर उनके रंग में रंगने लगते है, उसमें प्रवाहित होने लगते है। अत: आचार्य बताते हैं कि ऐसे विषयों की चर्चा जिससे अनात्मा में ही दृढ़ता और महत्वबुद्धि होने लगें, उसे त्यागकर अन्य के साथ भी इसी विषय की चर्चा करें। जब हमें इसीकी चर्चा करनी है तो स्वाभाविक ही किसका संग करना उसकी स्पष्टता होने लगती है। जिसके भी संग से हमारी वृत्ति अनात्मपरक होकर उसीमें निष्ठ करती है, ऐसे संग को दु:संग जानते हुए उसका त्याग करें और ऐसे प्रबुद्धजनों वा संतजनों का संग करें। उनके साथ ऐसी चर्चा करें कि जिससे ज्ञान का महत्व स्थापित होकर, अपनी ब्रह्मस्वरूपता में ही निष्ठा होती जाएं।

अन्योन्य तत्प्रबोधनम् – किसी अज्ञानी व्यक्ति अपनी समस्या लेकर आएं तो उनकी सांसारिक पीड़ा को देखते हुए उसका इसी ज्ञान के प्रकाश में ही समाधान करने की चेष्टा करें। अन्य में इस ज्ञान की रुचि हो और महत्व बढ़ें, उस प्रकार से उसे प्रबुद्ध करने की चेष्टा करें। अन्य से इस विषयक चर्चा के माध्यम से सतत मनन होता जाता है, जिससे अपने मन के संशय आदि का भी समाधान होकर ज्ञान में स्पष्टता होती जाती है। इस प्रकार सतत ज्ञान में रमने का मौका मिलता है। सतत चिन्तन, मनन आदि के माध्यम से अन्य के महत्व की समाप्ति के अनुपात्त में इस एक का महत्व स्थापित होता है। सतत उसमें रमने से अपनी ब्रह्मस्वरूपता में निष्ठा दृढ़ होती जाती है।

इसीलिए ब्रह्मविद् अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ने अनेक परक अनात्मा के चिन्तन को समाप्त करके ब्रह्मविषयक एकपरक चिन्तन को ही ब्रह्माभ्यास बताया हैं। जब तक ब्रह्म में निष्ठा नहीं हो जाती तब तक इसका महत्व समझते हुए एक जिज्ञासु साधक को सतत उसका आश्रय लेना चाहिए।
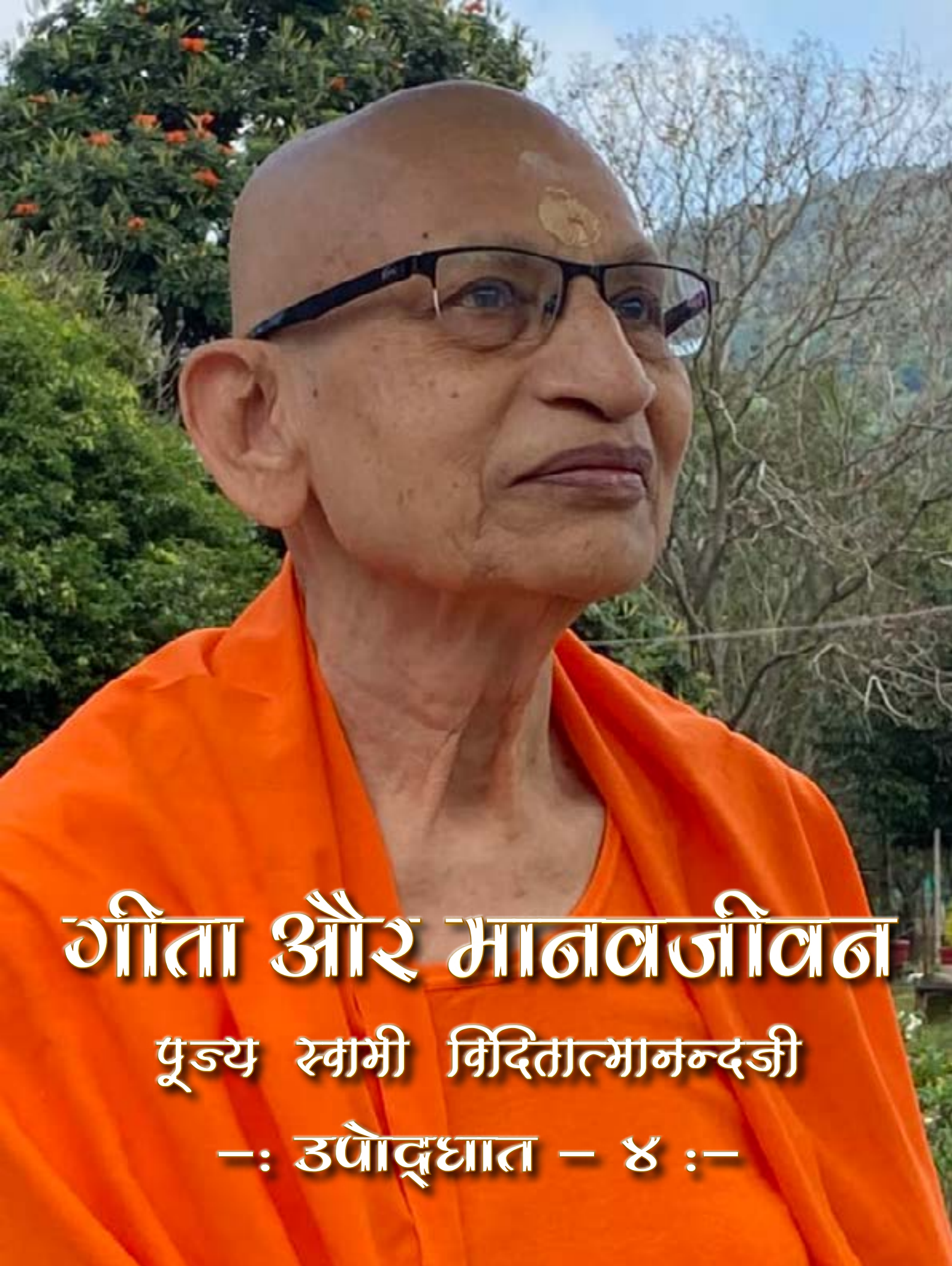
गीता और मानवजीवन
पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी
-: उपोद्‌घात - ४ :-

गीता और मानवजीवन

प्रमाणभूत कौन? :
मनुष्य अपने हृदय अथवा मन के प्रति यदि ध्यान दे, अपनी अन्तरात्मा की आवाज को ठीक से सुनें - जो जीवन के मूलभूत मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और सही अर्थ में मानव बन सकता है। मनुष्य के लिए सच्चे मानव बनना मुश्किल नहीं है, क्योंकि मानवता उनका सवभाव ही है और इसलिए निराशा का कोई स्थान नहीं है। कईबार हम खुद के प्रति निराश हो जाते है कि, 'यह हमसे कैसे सम्भव हो सकेगा? शास्त्र जिस प्रकार के आदर्श प्रस्तुत करते है वे आदर्श हमारे लिए असम्भव प्रतीत हो रहे है। हमारे वर्तमान जीवन या स्वभाव को देखते हुए ऐसा लगता है कि इन आदर्शो को हम किसी तरह से भी सिद्ध नहीं कर सकते है।' किन्तु यह सत्य नहीं है। भगवान ने प्रत्येक व्यक्ति को शक्ति/सामर्थ्य देकर यहां भेजा है जिससे कि वह स्वयं का उद्धार कर सके। हमारा मन ही हमारा मित्र बन सकता है और वही हमारा शत्रु भी। इस समय ऐसा लगता है कि हमारी आत्मा अर्थात् मन हमारा शत्रु है। दुर्योधन जिसने बहुत पढ़ा-लिखा, उच्च शिक्षा को प्राप्त किया था। उनसे पूछा गया कि 'तुम ऐसा अधार्मिक आचरण क्यों करते हो?' तब उसने उत्तर दिया कि, 'मुझे पता है कि धर्म क्या है, किन्तु किसी कारणवश मैं उसका आचरण नहीं कर सकता हूं और अधर्म क्या है, वह भी मैं अच्छी तरह जानता हूं, किन्तु किसी कारणवश उसे मैं छोड़ नहीं सकता।' अपने अन्दर भी ऐसा ही कुछ है, जिसके कारण धर्म के प्रति प्रेम होते हुए भी उसमें प्रवृत्ति नहीं हो पाती है और अधर्म के प्रति द्वेष होते हुए भी उससे निवृत्ति नहीं हो पाती है। उसका क्या कारण होगा? क्या विज्ञान उसका कारण है? नहीं, जीवन के अद्यतन सुख-साधन उसका कारण है? नहीं.... तो क्या आधुनिक समय ही ऐसा है? नहीं। अज्ञान ही एकमात्र कारण है,

गीता और मानवजीवन

अन्य कोई कारण नहीं है। इसलिए मनुष्य को सच्चा मानव बनाने का ज्ञान ही एकमात्र उपाय है।

ज्ञान मात्र शब्दों से दिया जाए ऐसा कुछ नहीं है। भगवान कृष्ण बताते हैं कि, 'श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, उनका अनुसरण समाज करता है। सामान्य मनुष्य में विचार करने की अधिक क्षमता नहीं होने के कारण श्रेष्ठ पुरुष के आचरण का अनुसरण करता है, और उसे ही जीवन में प्रमाण-भूत मानता है। सम्राट अशोक ने जब बौद्धधर्म अंगीकार किया तब पूरे देश ने स्वत: ही उस धर्म को स्वीकार कर लिया। क्योंकि उस धर्म को प्रामाणिकता, राज्य-आश्रय मिला। अशोक के अहिंसा का पालन करने पर पूरा देश अहिंसा का पालन करने लगा, क्योंकि राजा जैसा आचरण करता है, वैसा ही अन्य लोग भी आचरण करते हैं। मनुष्य बड़े लोगों के गलत आचरण करते हुए देखते है और उससे गलत मार्ग पर चलने लगते है। यदि आज के युवान को निराशा हासिल हो, उनको जीवन में कोई दिशा न मिले अथवा वह अपनी प्रामाणिकता को ताक पर धर दें तो उसमें उसका उतना दोष नहीं कहा जाएगा। क्योंकि, वह जहां नजर उठाकर देखता है वहां सब जगह उसे ऐसा ही दीखता है।

'स्वामीजी! हम क्या करें? देखिएं, नेता लोग ही ऐसा करते हैं। उसको देखकर सब ऐसा ही करेंगे न?' बात तो सत्य है। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि किसीके अनुसरण करके हम भी अप्रामाणिकता, हिंसा का आचरण करें। शास्त्रों में ऐसा बताया है कि यदि अपने गुरु भी उचित आचरण न करते हो, या मूल्यों का पालन न करते हो तो उनका भी त्याग करना चाहिए। यदि राजा उनके धर्म का पालन नहीं करता है, तो उसका भी त्याग करना चाहिए।

ऐसे में अब किसे प्रमाणभूत मानें? श्रेष्ठ पुरुषों या नेताओं को प्रमाणभूत मानने के बजाय अपने शास्त्र को ही प्रमाणभूत मानना पडेगा। भगवद्गीता ऐसा शास्त्र है, जो हमें जीवन के उत्कृष्ट मूल्य प्रदान करती है और जीवनके उचित निर्माण हेतु मार्गदर्शन देती हैं।

ओम् नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय

-कर्तृभ्यो वंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः।

सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो

ब्रह्मैवाहमस्मि। ब्रह्मैवाहमस्मि।।

भावार्थ : 'वह ब्रह्म जो समस्त प्रपंच से रहित, चेतनस्वरूप, हमारी अन्तरात्मा की तरह स्थित - वह हम ही हैं,' - उन ब्रह्मविषयक ज्ञानरूप ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय प्रवर्तक ब्रह्मा आदि देवताओं, अपने पूर्वज ऋषियों को, महात्माओं तथा समस्त गुरुजनों को नमस्कार करते हैं।

– ३३ –

उत्तरकाशी

परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

प्रकृति सौंदर्य क्या है? ब्रह्म सौंदर्य ही प्रकृति सौंदर्य है। ब्रह्म की सुन्दरता को छोड प्रकृति की कोई अलग सुन्दरता नही होती। जैसे पुरुष से उसकी शक्ति भिन्न नही है, वैसे ब्रह्म से ब्रह्मशक्ति प्रकृति भी भिन्न नहीं है, अतः प्रकृति का विलास – ब्रह्मा का विलास है। प्रकृति का सौंदर्य – ब्रह्मा का सौंदर्य है। यदि प्रकृति में कोई सामर्थ्य है तो वह ब्रह्म का सामर्थ्य है। प्रकृति के तत्त्वों का साक्षात्कार करनेवाला एक ज्ञानी प्रकृति और प्रकृति विलास सबको ब्रह्मरूप में देखता है। हिमाच्छादित शैलश्रृंग तथा वनराजि यह सब उसके लिए निरतिशय सौंदर्यशाली ब्रह्म ही है। ब्रह्म! ब्रह्म!! ब्रह्म!!!

ब्रह्मवित् के लिए जहां जाओ, जिसे देखो ब्रह्म को छोडकर और कुछ नही है। ब्रह्म ही विभिन्न नामरूपों में दिखायी देता है।

जैसा कि पहले वर्णन किया गया है, वैसा ही अति विकट स्थल फिर हमारे सामने आ गया। यह स्थल यम राजधानी के राजपथ के समान भयानक था कि पास यदि कोई हाथी भी खडा हो तो वह न दिखायी पडे। ऐसे घने घने घोर वनान्तरों से, पर्वतीय लोगों द्वारा आगे बढ़ते हुए बनाये जाने वाले मार्गो से होकर, कई चढ़ाइयों–उतराइयों को पार करके हम शाम के पांच बजे से पहले सरोवर के किनारे पहुच गये।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)
मनु और दशरथजी का चरित्र
– 02 –
धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

श्री मनु और दशरथ चरित्र

प्रकृति के साथ अगणित समस्याओं का भी जन्म होता है। विविधता में सौन्दर्य के साथ स्वाद और संघर्ष की समस्याएं भी बढ़ जाती हैं। उसके नियमन हेतु संविधान का निर्माण किया जाता है। मनु ने भी सृष्टि-विस्तार के साथ सन्तुलन और समन्वय के लिए जिस शास्त्र का निर्माण किया यह मनुस्मृति के रूप में सामने आया। मनु ने उस संविधान के आधार पर ही सृष्टि को चलाने को प्रयास किया हो यह स्वाभाविक ही था। यात्रा में ऐसे अवसर आते हैं जब व्यक्ति के लिए मार्ग का निर्णय करना कठिन हो जाता है। उस समय व्यक्ति लीक अथवा चिह्न के माध्यम से मार्ग के निर्धारण का प्रयास करता है। लीक यह सूचित करती है कि पहले भी उस दिशा में कोई गया है। मनुस्मृति इसी लीक का परिचायक है। किन्तु स्मृति द्वारा संचालित धर्म के प्रतिपादन का उद्देश्य क्या है? जिनकी दृष्टि केवल व्यक्ति के सामाजिक पक्ष पर ही है, वे यह सोचकर सन्तुष्ट हो सकते हैं कि धर्म के द्वारा व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में सामंजस्य की स्थापना हो जाती है। एक सुव्यवस्थित समाज स्वयं में ही कम बड़ी उपलब्धि नहीं है। किन्तु जिनकी दृष्टि आध्यात्मिक है, वे जीवन का केवल सीमित अर्थों में ही स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं हो सकते। उसकी दृष्टि में धर्म का अन्तिम परिणाम वैराग्य होना चाहिए।

'धर्म तें बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छ-प्रद बेद बखाना।' इसका तात्पर्य यह है कि स्मृति धर्म के द्वारा जिस सन्तुलित समाज की स्थापना की जाती है, वह सुखोपलब्धि का साधन है। धर्म उसकी उपलब्धि, वितरण और उपभोग की पद्धति पर समुचित नियन्त्रण करता है, जिससे सारा समाज सुखी हो सके। किन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या विषय व्यक्ति को समग्र सुख और शान्ति प्रदान कर सकते हैं? इसका स्पष्ट उत्तर नकारात्मक है क्योंकि व्यक्ति जिन इन्द्रियों के माध्यम से सुख प्राप्त करता है उनकी सीमाएं हैं। पहले तो अभीप्सित विषय उस मात्रा में उपलब्ध ही नहीं किन्तु यदि सुलभ भी हो जाएं तो व्यक्ति में उसे ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती है।

श्री मनु और दशरथ चरित्र

और व्यक्ति यदि उनका अनियन्त्रित उपभोग करे तो परिणामस्वरूप रोंगों से घिर जाता है। अन्त में शरीर का विनष्ट होना भी अवश्यम्भावी है। अत: विचारक इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विषयों के द्वारा समग्र सुख की अनुभूति असम्भव है। तब व्यक्ति के अन्तर्मन में विषयों के प्रति विरक्ति की भावना जाग्रत होती है। इस विरक्ति के पश्चात् ज्ञान अथवा भक्ति के माध्यम से समग्रता की उपलब्धि का प्रयास किया जाता है। वैराग्य के इन्हीं दो परिणामों को 'धर्म ते बिरति, जोग ते ग्याना' के माध्यम से दर्शाया गया है। किन्तु यह ऐसा तथ्य नहीं है कि जिसका परिणाम अवश्यंभावी रूप से यही हो। धर्म के द्वारा विषयों का नियन्त्रित सेवन करते हुए भी अगणित व्यक्तियों के जीवन में वैराग्य का उदय नहीं होता? विषयों में जिस प्रत्यक्ष सुखानुभूति का अनुभव होता है, उससे भिन्न परिणाम निकालना व्यक्ति के लिए सरल नहीं होता। वह विषय सेवन के लिए इन्द्रियों की सामर्थ्य बढ़ाने का प्रयास करता है और यदि इस शरीर से सम्भव न हो तो वह ऐसे शरीर की कामना और कल्पना करता है कि जिसमें वृद्धावस्था और रोग की समस्याएं न हों। स्वर्ग की शोध इसी प्रक्रिया का परिणाम है। स्वर्ग में देवशरीर के द्वारा निरन्तर भोग किए जाने पर भी शरीर में रोग अथवा वृद्धावस्था का उदय नहीं होता, ऐसा वर्णन किया गया है। पर समस्याओं से मुक्ति वहां भी नहीं है। वहां भी ईर्ष्यावृत्ति का दु:ख तो बना ही रहता है क्योंकि मान्यता यह है कि स्वर्ग में भोगों की मात्रा पुण्य के तारतम्य से ही निर्धारित की जाती है। फिर काल की सीमा से वहां भी मुक्ति नहीं है। पुण्य समाप्त होते ही व्यक्ति पुन: नीचे की ओर ढकेल दिया जाता है।

अत: धर्म से वैराग्य का उदय होता है, इस कथन की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त है कि धर्म के द्वारा वैराग्य का उदय होना चाहिए। पर ऐसा बहुधा नहीं होता। इसीलिए यह स्वीकार किया गया है कि हजारों में कोई एक व्यक्ति धर्मपरायण होता है और करोड़ों धर्मशील व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति में वैराग्य का उदय होता है।

निःश्वासे न हि विश्वासः
कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्
हरेर्नामैव केवलम् ।।

भावार्थ : सांसों का कोई भरोसा नहीं है, पता नहीं कब रुक जाएगी। इसलिये बाल्यावस्था से ही हरि नाम का कीर्तन करना चाहिये।

पौराणिक गाथा

ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य

ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य

वैदिककाल में राज्यसभा में वेदविषयक बड़े बड़े शास्त्रार्थ हुआ करते थे। कई बार शास्त्रार्थ ही यज्ञ का आधारभूत प्रयोजन रहता था। एक बार राजा जनक ने भी एक विशाल दक्षिणायज्ञ का आयोजन किया कि जिसमें प्रचूर मात्रा में दक्षिणाएं प्रदान की जाती है। यज्ञ समाप्त होने पर जब दक्षिणा देने का समय आया तब राजा जनक ने यह निश्चय किया कि यज्ञ में एकत्रित तपस्वीगण में श्रेष्ठ तथा वेद-विशारद में श्रेष्ठ ज्ञानियों को ही दक्षिणा दी जाएगी। उनके लिए उन्होंने सोने से लदी हुई, सोने से सुसज्जित सींग वाली सहस्रगाय तैयार की।

राजा जनक ने सभा में उद्‌घोष किया कि यहां एकत्रित समस्त वेदविशारद, ब्रह्मविद् ब्राह्मणों में जो सर्वश्रेष्ठ, जो ब्रह्मज्ञ है, वह अपने ब्रह्मज्ञ होने की घोषणा करके यह दक्षिणाएं स्वीकार करें। राजा ने कौन ब्रह्मज्ञ है, इसका निर्णय करने का बोझ ब्राह्मणों को ही सोपा। किसी में साहस नहीं हुआ कि स्वयं को ब्रह्मज्ञ होने का उद्‌घोष करें। सभी ब्राह्मण, वेदविद् ऋषिलोग संकोच में आ गएं। कुछ देर तक सभा में सन्नाटा छाया रहा।

इस सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि जो शिष्यों के संग उपस्थित थे, उन्होंने खड़े होकर अपने शिष्यो को आदेश दिया, 'वत्स! इन गायों को अपने आश्रम में ले चलो। यह सुनकर राजपुरोहित अश्वल जो स्वयं को ब्रह्मनिष्ठ मानता था। उन्हें यह धारणा थी कि जब कोई स्वयं को ब्रह्मज्ञ घोषित नहीं करेगा तो राजा हमें ही ब्रह्मज्ञ जानकर समस्त गो प्रदान करेंगे। किन्तु उनकी धारणा गलत सिद्ध होते हुए देखकर वह क्रोधित होकर बोला कि, 'क्या तुम हमसे अधिक श्रेष्ठ विद्वान् हो?' यह सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा कि जो ब्रह्मज्ञ हो, उसे हमारा प्रणाम! हमें तो आश्रम में गायों की आवश्यकता है, इसलिए हम ले जा रहे हैं।

अश्वल ने कहा कि हमें हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिएं। यदि आप समर्थ हुए तो ही आप इसके अधिकारी है। याज्ञवल्क्य ने सहर्ष उनके प्रश्नों के उत्तर दिएं। अश्वल ने उसके समक्ष अपनी हार स्वीकार कर ली और स्वयं को अपमानित मानकर वे शान्त हुएं।

तब वाचक ऋषि की पुत्री विदुषी गार्गी ने महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ किया। अनेकों प्रश्नोत्तर के उपरान्त याज्ञवल्क्य ने कहा कि हम कैसे यह कहें कि 'हम ब्रह्म को जाननेवाले हैं। क्योंकि ब्रह्म को जानने का अर्थ है कि उसे विषयीकृत करना। जब तक उसे बुद्धि के विषय की तरह जान रहे हैं, तब तक हमने किसी अनात्मा को ही जाना है।'

विदुषी गार्गी महर्षि से सन्तुष्ट होकर उनके चरणों में नतमस्तक हुई और उन्हें ब्रह्मनिष्ठ की तरह स्वीकार किया और याज्ञवल्क्य को ही वास्तविक दक्षिणा के अधिकारी की तरह सर्वश्रेष्ठ माना।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

मिशन समाचार

गीता ज्ञान यज्ञ - मराठवाड़ा इन्फो-टेक, औरंगाबाद

मिशन समाचार
गीता ज्ञान यज्ञ - मराठवाड़ा इन्फो-टेक, औरंगाबाद

Chapter VI - ''ध्यान योग''

मिशन

गीता ज्ञान यज्ञ - मराठवाड़ा इन्फो-टेक, औरंगाबाद

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम में गीता की साप्ताहिक कक्षाएं

श्री कागलीवाल (नाथ ग्रुप) के निवास पर भिक्षा

मिशन समाचार

परिवार को आशीर्वाद

मिशन समाचार

श्री रामनवमी पर्व - हर्षवर्धन के निवास पर

मिशन समाचार

भक्तों के साथ व्यक्तिगत चर्चा (MIT)
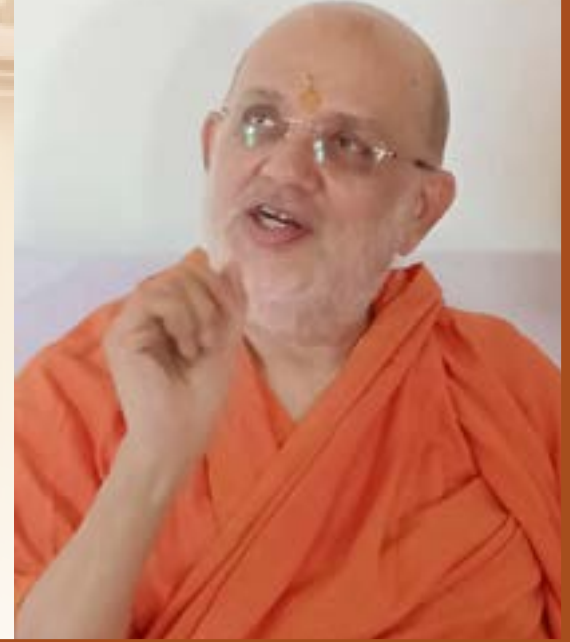
आश्रम समाचार

आदि शंकराचार्य जयन्ति

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव अभिषेक (अंगद कपूर)

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव अभिषेक (रेखा शर्मा)

पूजा/भण्डारा (श्री संदीप मिश्रा को भावांजलि)
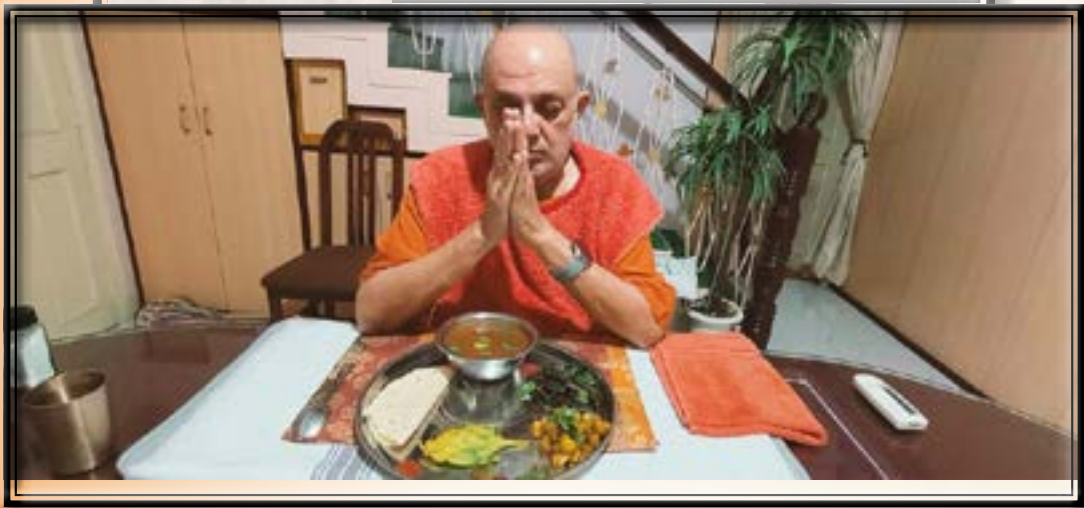
ईलोरा गुफा प्रवास

मिशन समाचार

ईलोरा गुफा

आश्रम समाचार

तीर्थयात्रा - श्री घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग

मिशन समाचार

जायकवाडी अभयारण्य - साम्भाजीनगर

आश्रम समाचार

श्री अर्चित गर्ग को जन्मदिन के शुभाशीष

आश्रम समाचार

श्रीमति स्वर्णलता एवं सुरेन्द्र दास को शुभाशीष

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

गीता ज्ञान यज्ञ

दि. 22 से 29 मई

आत्मज्योति आश्रम, बड़ौदा

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

गीता ज्ञान यज्ञ

दि. 1 से 4 जून

गोकुल धाम, गोरेगांव

पूज्य स्वामिनी समतानन्दजी

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

प्रतिदिन प्रातः 8.30 बजे से (मंगल से शनिवार)

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

श्रीमद् भगवद् गीता

साप्ताहिक कक्षाएं / प्रति शनिवार

प्रति शनिवार सायं 5.00 बजे से

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

Internet

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Gita Ch. 12

~ Gita Ch. 17

~ Sadhna Panchakam

~ Drig-Drushya Vivek

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

- Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

- Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

- Kathopanishad Pravachan

- Shiva Mahimna Pravachan

- Hanuman Chalisa

~ Laghu Vakya Vrittu (Guj)

~ Gita Ch. 5 (Guj)

~ Gita Upodghat Bhashya (Guj)

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Talks on Internet :

Audio Pravachans

~ Complete Gita Pravachans

~ Gita Ch -05

~ Nataka Deep

~ Sadhna Panchakam

~ Drig Drushya Vivek

~Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Monthly eZines

~ Vedanta Sandesh - May '23

~ Vedanta Piyush - Apr '23